छायावाद

छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के 'रोमांटिक' उत्थान की वह काव्यधारा है जो लगभग ईसवी सन् १९१८ से '३६ ('उच्छ्वास' से 'युगान्त') तक की प्रमुख युगवाणी रही, जिसमें प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि हुए और सामान्य रूप से 'भावोच्छ्वास-प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना-वैभव की वह 'स्वच्छन्द प्रवृत्ति' है जो देश-काल-गत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा-आकांक्षा में निरंतर व्यक्त होती रही है। स्वच्छन्दता की उस सामान्य भाव-धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य में छायावाद पड़ा।

तत्कालीन पत्रिकाओं से पता चलता है कि 'छायावाद' संज्ञा का प्रचलन १९२० ई० तक हो चुका था। मुकुटधर पांडेय ने १९२० ई० में जबलपुर की 'श्री शारदा' पत्रिका में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक चार निबन्धों की एक लेख-माला प्रकाशित करवाई थी। इस लेखमाला से पता चलता है कि 'हिन्दी में उसका नितान्त अभाव देखकर इधर-उधर की कुछ टीका-टिप्पणियों के सहारे' मुकुटधर पांडेय ने वह निबन्ध प्रस्तुत किया था। इससे स्पष्ट है कि उस निबन्ध के पहले भी छायावाद पर कुछ टीका-टिप्पणी हो चुकी थी।

उस युग की प्रतिनिधि पत्रिका 'सरस्वती' में 'छायावाद' का प्रथम उल्लेख जून, १९२१ ई० के अंक में मिलता है। किन्हीं सुशील कुमार ने 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक एक संवादात्मक निबन्ध लिखा है। इस व्यंग्यात्मक निबन्ध में छायावादी कविता को टैगोर-स्कूल की चित्रकला के समान 'अस्पष्ट' कहा गया है।

'छायावाद क्या है' प्रश्न का उत्तर देते हुए मुकुटधर पांडेय ने लिखा है कि "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायेंगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिए आया है।" इसी प्रकार सुशील कुमार वाले निबन्ध में भी छायावादी कविता को 'कोरे कागद की भाँति अस्पष्ट', 'निर्मल ब्रह्म की विशद छाया', 'वाणी की नीरवता', 'निस्तब्धता का उच्छ्वास' एवं 'अनंत का विलास' कहा गया है।

Scanned with CamScanner

'छायावाद' के लिए 'मिस्टिसिज्म' शब्द के आते ही 'रहस्यवाद' शब्द की बुनियाद पड़ गयी और सुकवि-किंकर-छद्मनाम-धारी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'आजकल के हिन्दी कवि और कविता' (सरस्वती : ६ मई, १९२७) निबन्ध से पता चलता है कि जिन कविताओं को और लोग छायावाद कहते थे उन्हीं को वे 'रहस्यवाद' कहना चाहते थे; लेकिन मुकुटधर पांडेय जहाँ उनमें 'आध्यात्मिकता' देखते थे, वहाँ आचार्य द्विवेदी के लिए वे 'अन्योक्ति पद्धति' से अधिक न थी, 'छायावाद' का प्रचलित अर्थ समझने की कोशिश करते हुए उसी निबन्ध में आचार्य द्विवेदी कहते हैं—"छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी-कविता कहना चाहिए।"

इस तरह पंत के 'पल्लव' और प्रसाद के 'झरना' आदि संग्रहों की कविताओं को १९२७ ई० तक अंग्रेजी में 'मिस्टिसिज्म' और हिन्दी में कभी 'छायावाद' और कभी 'रहस्यवाद' कहा जाता था। १९२८ ई० में प्रकाशित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'काव्य में रहस्यवाद' पुस्तक से भी यही सिद्ध होता है। साथ ही, शुक्ल जी के विवेचन से यह भी मालूम होता है कि तात्त्विक दृष्टि से उन रचनाओं को 'रहस्यवाद' कहा जाता था और रूप-विधान की दृष्टि से 'छायावाद'।

आगे चलकर जब महादेवी वर्मा की प्रियतम-सम्बोधित बहुत-सी कविताएँ प्रकाश में आ गयीं तो लोगों ने रहस्यवाद और मिस्टिसिज्म शब्द को केवल इसी प्रकार की कविताओं के लिए सीमित कर दिया धीरे-धीरे 'छायावाद' से इसे अलगाकर 'रहस्यवाद' नाम की एक स्वतंत्र काव्य-धारा मान ली, जिसका विकास वेद-उपनिषद् से आरंभ होकर कबीर, मीरा आदि से होता हुआ हिन्दी में महादेवी वर्मा तक पहुँचता है। फलतः 'छायावाद' केवल आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति रह गयी और 'रहस्यवाद' सनातन तथा चिरंतन।

सन् १९३० के आसपास हिन्दी छायावादी कविताओं को आलोचना के सिलसिले में अंग्रेजी के रोमांटिक कवि वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि का नाम लिया जाने लगा और इस तरह छायावाद के साथ 'रोमैंटिसिज्म' नाम भी जुड़ गया। आचार्य शुक्ल ने 'रोमैंटिसिज्म' के लिए हिन्दी में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द चलाया और वह चल भी पड़ा, किन्तु उनके 'स्वच्छंदतावाद' की परिभाषा इतनी सीमित थी कि वह सम्पूर्ण छायावादी कविताओं को न घेर सकी; उसकी सीमा में केवल श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, गुरुभक्त सिंह, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट और संभवतः नवीन तथा माखनलाल चतुर्वेदी ही आ सके। उनके अनुसार 'प्रकृति प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय, उनकी गतिविधि पर आत्मीयता-व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुःख में उनके साहचर्य की भावना ये सब बातें स्वाभाविक स्वच्छंदता के पथचिह्न हैं।"

Scanned with CamScanner

इस प्रकार शुक्ल जी के 'स्वच्छंदतावाद' में छायावाद की रहस्यभावना के लिए कोई जगह न थी। फलत: 'स्वच्छंदतावाद' अंग्रेजी के 'रोमैंटिसिज्म' का अनुवाद होते हुए भी छायावादी कविता का केवल एक अंग बनकर रह गया और धीरे-धीरे 'छायावाद' संपूर्ण 'रोमैंटिसिज्म' का वाचक बन गया।

आजकल हिन्दी में जब 'छायावाद' कहा जाता है तो उसका मतलब उसी तरह की कविताओं से होता है जिन्हें यूरोपीय साहित्य में 'रोमैंटिसिज्म' की संज्ञा दी जाती है और जिसके अंतर्गत रहस्यभावना तथा स्वच्छंदता-भाव के साथ-साथ और भी कई बातें मिलती हैं।

(२)

[छायावाद सम्बन्धी परिभाषाओं और आलोचनाओं को देखकर ऐसा लगता है कि आलोचकों ने प्राय: किसी एक कवि अथवा किसी एक कविता-संग्रह को ध्यान में रखकर छायावाद की विशेषताओं का निरूपण किया है। इस तरह उन्होंने 'शुद्ध छायावाद' की एक सीमारेखा खींचकर छायावाद के अन्य कवियों तथा कविताओं को उससे बाहर कर दिया है। जैसे किसी ने पंत जी को ही शुद्ध छायावादी माना है, तो दूसरे से उनकी संपूर्ण रचनाओं में भी केवल 'पल्लव' को 'शुद्ध' छायावाद के अंतर्गत स्वीकार किया है और फिर 'पल्लव' में भी अपनी रुचि तथा पूर्व-निश्चित धारणा की समर्थक कविताओं के आधार पर 'छायावाद' की सामान्य विशेषताएँ गिना दी हैं। इस तरह यही नहीं कि प्रसाद, निराला, महादेवी की बहुत-सी कविताएँ 'छायावाद' से बाहर हो जाती हैं बल्कि स्वयं पंत जी की भी 'वीणा', 'ग्रन्थि' और 'गुंजन' की काफी रचनाएँ छायावादेतर ठहरती हैं, परन्तु आलोचक को इसकी परवाह नहीं है। उसका 'शुद्ध' छायावाद अपनी जगह पर कायम है और वह कायम रहेगा, भले ही उसकी सीमा से छायावाद का अधिकांश साहित्य बाहर पड़ा रह जाये।]

जाहिर है कि वह सीमा छायावाद की नहीं, बल्कि उन आलोचकों की है। छायावाद की विशेषताओं का आकलन छायावाद नाम से ख्यात संपूर्ण कविताओं के आधार पर होना चाहिये।

इस ढंग से विचार करने पर पता चलता है कि छायावाद विविध, यहाँ तक कि परस्पर-विरोधी-सी प्रतीत होने वाली काव्य-प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और छानबीन करने पर इन प्रवृत्तियों के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। स्पष्ट करने के लिए यदि भूमिति से उदाहरण लें तो कह सकते हैं कि यह एक केन्द्र पर बने हुए विभिन्न वृत्तों (Cocentric Circles) का समुदाय है। इसकी विविधता उस शतदल के समान है जिसमें एक ग्रन्थि से अनेक दल खुलते हैं। एक युग-चेतना से भिन्न-भिन्न कवियों के संस्कार, रुचि और शक्ति के अनुसार

Scanned with CamScanner

विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त किया; कहीं एक पक्ष का अधिक विकास हुआ तो अन्यत्र दूसरे पक्ष का।

एक छवि के असंख्य उडगण
एक ही सब में स्पन्दन

दूसरी ओर, 'छायावाद' की विभिन्न प्रवृत्तियों और विशेषताओं की गणना करने वाले आलोचकों ने भी छायावाद को एक स्थिर और जड़ वस्तु मानकर विचार किया है। उनसे इस तथ्य की उपेक्षा हो गयी है कि छायावाद एक प्रवहमान काव्यधारा थी; एक ऐतिहासिक उत्थान के साथ उसका उदय हुआ और उसी के साथ उसका क्रमिक विकास तथा ह्रास हुआ। छायावाद के अठारह-बीस वर्षों के इतिहास में अनेक विशेषताएँ, जो आरम्भ में थीं, वे कुछ दूर जाकर समाप्त हो गयीं और फिर अनेक नयी विशेषताएँ जुड़ गयीं। निःसन्देह छायावाद के उदय और अस्त की चर्चा तो हुई है, लेकिन उसके क्रमिक विकास का विचार बहुत कम हुआ है। इसका मुख्य कारण यही है कि भाववादी आलोचकों ने छायावाद को प्रायः समाज से ऊपर सर्वथा शुद्ध भाव-राशि मानकर विचार किया है।

(३)

छायावाद व्यक्तिवाद की कविता है, जिसका आरम्भ व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकार करने और करवाने से हुआ, किन्तु पर्यवसान संसार और व्यक्ति की स्थायी शत्रुता में हुआ। बीसवीं सदी की काव्यसीमा में प्रवेश करने पर हिन्दी कविता के पाठक का ध्यान सबसे पहले जिस विशेषता की ओर जाता है, वह है वैयक्तिक अभिव्यक्ति। व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में आधुनिक कवि ने जो निर्भीकता और साहस दिखलाया, वह पहले किसी कवि में नहीं मिलता। आधुनिकता 'लीरिक' अथवा 'प्रगीत' इसी वैयक्तिकता के प्रतीक हैं। मध्ययुग के संत-भक्त और रीतिवादी कवि प्रायः निर्वैयक्तिक ढंग से अपनी बातें कहते थे। संतों और भक्तों के विनय के पदों में जो वैयक्तिक ढंग दिखायी पड़ता है, वह केवल भगवान् के प्रति निवेदन है; अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में वे प्रायः मौन ही रहते थे और काव्य में अपने प्रणय-संबंधों की चर्चा करने की बात तो उस समय सोची भी नहीं जा सकती थी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओं से कितना बँधा हुआ था।

आधुनिक कवि ने जीवन की इस संकुलता तथा अतिशय सामाजिकता को तीव्रता के साथ अनुभव किया) वर्ड्सवर्थ के शब्दों में उसे लगा कि 'The world is too much with us.' प्राचीन कृषिव्यवस्था पर आधारित समाज ऐसा ही होता है जिसके छोटे दायरे में लोगों को अपने पड़ोसी के अच्छे-बुरे सभी कार्यों में जरूरत से ज्यादा दिलचस्पी रहती है; और कभी-कभी यह सहायक की जगह बाधक

Scanned with CamScanner

प्रतीत होने लगती है। आधुनिक शिक्षा से प्रभावित युवक ने इस व्यक्ति रोध सामाजिकता का बहिष्कार करके पहले तो निर्जनप्रकृति में आश्रय लिया, जैसा कि पंत जी के वक्तव्यों से पता चलता है और फिर धीरे-धीरे शक्ति-संचय करके समाज में आकर उन रूढ़ियों के प्रति अपने वैयक्तिक विद्रोह का उद्घोष किया। पहले तो उसे पशु-पक्षियों की तरह प्राकृतिक जीवन में ही अपनी निजता, स्वतन्त्रता और आत्मभाव की संभावना दिखाई पड़ी, किन्तु बाद में जब कदम-कदम पर उसका संघर्ष सामाजिक रूढ़ियों से होने लगा तो उसने अपने व्यक्तित्व को उसके प्रतिरोध में खड़ा किया। 'आत्मकथा' उसका विषय हो गया और 'मैं' उसकी शैली। प्रसाद ने तो स्पष्टत: अपनी 'आत्मकथा' का स्पष्टीकरण ही लिख डाला और 'निराला' ने सबकी ओर से स्वीकार किया कि मैंने 'मैं' शैली अपनायी!''

अपनी दुर्बलताएँ भी उसने साहस के साथ कहीं और जिन बातों को अब तक लोग समाज के भय से छिपाते थे उन्हें भी छायावादी कवि ने खोलकर रख दिया। पंत जी ने 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'ग्रन्थि' में प्रणयानुभूति की अबाध अभिव्यक्ति की। 'उच्छ्वास' की सरल बालिका कोई आध्यात्मिक सत्ता नहीं है, और न उसके साथ व्यक्त किया हुआ प्रणय-संबन्ध कोई आध्यात्मिक भावना है! सीधे शब्दों में 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी'। लेकिन समाज तो ऐसी चीजों को बर्दास्त कर नहीं सकता, इसलिए उस लांछन के विरुद्ध अपने प्रेम की पवित्रता को घोषित करते हुए कवि कहता है—

कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय यह गंगा-जल की धार!—

प्रसाद का 'आँसू' भी मूलत: इसी प्रकार का मानवीय प्रेम-काव्य है, जिसके द्वितीय संस्कार में कवि ने सामाजिक भय से रहस्यात्मकता और लोकमंगल का गहरा पुट दे दिया है। फिर भी असलियत जगजाहिर रही और आचार्य शुक्ल से भी कहे बिना न रहा गया कि 'इन रहस्यवादी रचनाओं को देखकर चाहें तो यह कहें कि इनकी मधुचर्या के मानस-प्रसार के लिए रहस्यवाद का परदा मिल गया अथवा यों कहें कि इनकी सारी प्रणयानुभूति ससीम से कूदकर असीम पर जा रही।'

छायावाद की इस प्रणय-सम्बन्धी वैयक्तिकता का प्रसार क्रमश: जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी हुआ। निराला का 'विप्लवी बादल' इसी वैयक्तिक विद्रोह का अग्रदूत है! 'सरोज-स्मृति' ('३५) और 'वन-बेला' ('३७) में यही वैयक्तिक विद्रोह और भी खुलकर व्यक्त हुआ। ये रचनाएँ कवि की आप बीती से अनावृत आख्यान हैं। जिस तरह की निजी बातें यहाँ एकदम खरे ढंग से कही गयी हैं

Scanned with CamScanner

हिन्दी में पहले कभी नहीं कही गयीं। जिस अहंवादी कवि के लिए 'अहंकृति में झंकृति—जीवन' हो उसकी कविताएँ भी स्वभावत: 'अहंकृति की झंकृति' होंगी।

जब पुरुष-व्यक्ति की यह स्थिति है तो इस पुरुष-प्रधान समाज में नारी की आत्माभिव्यक्ति पर कितनी रोक हो सकती है तथा एक नारी को स्पष्ट आत्माभिव्यक्ति पर कितनी कठिनाई आ सकती है, इसका पता महादेवी जी के रहस्य-गीतों से ही लगाया जा सकता है; फिर भी महादेवी जी ने कहीं कहा है कि आज का साहित्यकार अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख लेना चाहता है। यही नहीं, 'छायावाद' पर विचार करते हुए उन्होंने कहा है कि इस व्यक्ति-प्रधान युग में व्यक्तिगत सुख-दुख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे, अत: छायायुग का काव्य स्वानुभूतिप्रधान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास-विषाद का सफल माध्यम बन सका।

छायावादी युग का मानव अपनी व्यक्तिता की खोज के लिए कितना आकुल था इसे 'कामायनी' के मनु के मुख से सुनें—

वन गुहा कुञ्ज मरु अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास!

आत्मविकास की टोह में निकला हुआ यह आधुनिक मनु धीरे-धीरे युगान्त तक जाते-जाते इतना व्यक्तिवादी हो गया कि बोल उठा—

मैं तो अबाधगति मरुत सदृश, हूँ चाह रहा अपने मन की!

इस स्वेच्छाचारी मनु ने आखिर संपूर्ण समाज के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी; जिसने आरम्भ में प्रजातन्त्र की नींव डाली, उसी ने सर्वसत्ताधारी निरंकुश शासक का पद प्राप्त कर लिया और इस समाज-विरोध के फलस्वरूप उसे घायल होकर अन्त में समाज से दूर कैलास-शिखर, पर पलायन करना पड़ा।

आरम्भ में जिस व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व की खोज के लिए निर्जन प्रकृति में प्रवेश किया था, अन्त में उसी ने समाज से भागकर प्रकृति के कल्पनालोक में शरण ली। जिससे आरंभिक आत्मप्रसार में समाज के सामन्ती मूल्यों को चुनौती थी, उसके अन्तिम अहंभाव में संपूर्ण समाज, विशेषत: अपने ही मध्यवर्गीय समाज की व्यावसायिकता से घबड़ाहट का तीव्र असंतोष और निराशा है। जिसकी आरम्भिक एकांत-प्रियता में शक्ति थी, उसकी अंतिम असामाजिकता में निराशा है। यह वह समय था जब 'कोलाहल की अवनी तजकर' कवि 'सागर के निर्जन तट' पर भागने लगा। परन्तु यह स्थिति तो 'छायावाद' के अंतिम दिनों में आयी और 'प्रसाद' में ही नहीं, बल्कि निराला, पंत, महादेवी सबमें; इससे पहले जो आत्म-विकास की भावना थी उसने जीवन में तथा काव्य में भाव तथा कल्पना का अभूतपूर्व वैभव-विस्तार किया। वस्तुत: यह व्यक्तिवाद ही छायावादी काव्य के विविध वृत्तों का केन्द्र-बिन्दु है।

Scanned with CamScanner

व्यक्तिवाद ने छायावादी कवि में यदि एक ओर वैयक्तिक अभिव्यक्ति की आकांक्षा उत्पन्न की तो दूसरी ओर सम्पूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्तिनिष्ठ बना दिया। छायावादी कवि संसार की सभी वस्तुओं को आत्मरंजित करके देखने का अभ्यस्त हो गया। विश्व की व्यथा से स्वयं व्यथित होने की जगह वह अपनी व्यथा से विश्व के व्यथित होने की कल्पना करने लगा। छायावाद के व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण को समझने के लिए उसके पूर्ववर्ती द्विवेदी-युग के विषयनिष्ठ अथवा तथ्यपरक काव्य को ध्यान में रखना आवश्यक है। द्विवेदी-युग का काव्य शुक्ल जी के शब्दों में जहाँ 'इतिवृत्तात्मक' था वहीं छायावादी काव्य 'रागात्मक' हो उठा। निर्जीव तथ्यों के स्थान पर छायावादियों के चुने हुए रागात्मक तथ्यों को रागरंजित करके सत्य के रूप में उपस्थित किया। इस व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण की विशेषता बतलाते हुए 'कलकत्ता विश्वविद्यालय व्याख्यान-माला के अन्तर्गत 'तथ्य और सत्य' (१९२३ ई०) व्याख्यान में रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि 'चित्रकार जब चित्र बनाने बैठता है तब वह तथ्य का संवाद देने नहीं बैठता। वह तथ्य को उसी हद तक स्वीकार करता है जिस हद तक उसको उपलक्ष्य करके किसी एक सुषमा का छंद विशुद्ध रूप में मूर्तिमान हो उठता है।'

इस प्रकार छायावादी कवियों ने चुने हुए तथ्यों को उपलक्ष्य बना करके अपने जीवन के अनेक सत्यों की अभिव्यंजना की। इस प्रक्रिया में छायावाद का ध्यान वस्तु के बाह्य आकार की अपेक्षा या तो उसमें निहित भाव की ओर गया या उसकी सूक्ष्म छाया की ओर। प्रकृति-चित्रण में पहले के कवि जहाँ पेड़-पौधों का नाम गिनाकर अथवा प्राकृतिक दृश्यों के स्थूल आकार का वर्णन करके संतुष्ट हो लेते थे, वहाँ छायावादी कवि ने प्रकृति के अन्त:स्पन्दन का सूक्ष्म अंकन किया। वृक्ष की अपेक्षा उसका ध्यान छाया की ओर था, यहाँ तक कि संपूर्ण कविता 'सुछवि के छायावान की साँस' हो गयी—केवल छाया नहीं बल्कि उससे भी अधिक सूक्ष्म उसकी साँस अर्थात् साँस लेती हुई छाया का स्पन्दन! यदि संध्या का वर्णन करते हुए द्विवेदी-युगीन कवि हरिऔध ने लिखा—

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलनी कुलवल्लभ की प्रभा।

तो उसी सन्ध्या का चित्रण मेघमय आसमान से उतरती सुन्दरी के रूप में करते हुए 'निराला' उसकी गतिविधि इस प्रकार आँकते हैं—

तिमिराञ्चल में चंचलता का नहीं आभास

Scanned with CamScanner

अलसता की सी लता
किंतु कोमलता की वह वेला
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह के अम्बर पथ से चली।

कहाँ तो सान्ध्य गगन में लोहित रंगों की चटक-मटक और कहाँ निस्पंद तिमिरांचल अलसता की लता तथा नीरवतायुक्त छाँह का संचरण!

इस तरह छायावाद ने वस्तुगत सौन्दर्य के सूक्ष्म स्तर का उद्‌घाटन करके हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। वस्तुतः प्रकृति अपने-आप में सुन्दर नहीं है, उसका सौन्दर्य मनुष्य के लिए है और मनुष्य युग-युग से प्रकृति को अपने तन-मन से सुन्दर बनाता आ रहा है। एक ओर मनुष्य के हाथों निसर्ग का नैसर्गिक सौन्दर्य और निखरता आया है तो दूसरी ओर मनुष्य का मन उस वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य के भी अनेक सूक्ष्म और अज्ञात स्तरों का उद्‌घाटन करता रहा है। छायावादी कवियों ने प्रकृति के छिपे हुए इतने सौन्दर्य-स्तरों की खोज की, वह आधुनिक मानव के भौतिक और मानसिक विकास का सूचक है। इस सौन्दर्य-बोध का विकास प्रकृति और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों का परिणाम है। प्रकृति ने मनुष्य में सौन्दर्य बोध जगाया और मनुष्य ने उद्‌बुद्ध होकर प्रकृति में नवीन सौन्दर्य की खोज की और इस तरह दोनों परस्पर वर्धमान हुए।

छायावाद के व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण ने प्रकृति-सौन्दर्य में ही सूक्ष्मता नहीं दिखाई, बल्कि मानव-सौन्दर्य में भी स्थूल शारीरिकता की जगह स्वस्थ, मांसल तथा भावात्मक सुषमा की प्रतिष्ठा की। मध्ययुग के कवि नारी की जिन भौंहों को 'कमान' समझते थे, छायावादी कवि के लिए उन्हीं 'करुण भौंहों में था आकाश'। यह नहीं—

कपोलों में उर का मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव
सरल संकेतों में संकोच
मृदुल अधरों में मधुर दुराव

इन पंक्तियों से नारी का स्थूल आकार ही सामने नहीं आता, बल्कि सुन्दर अंगों के माध्यम से उसके आन्तरिक भाव-सौन्दर्य का भी आभास मिल जाता है।

नारी की लज्जा का चित्रण मध्ययुगीन कवियों ने भी किया था, किन्तु 'कनक-किरन के अंतराल में लुक-छिपकर चलने वाले लाज-भरे सौन्दर्य' को तो प्रसाद ने ही देखा। इसके अतिरिक्त 'कामायनी' में नारी को लज्जा का जो भव्य चित्रण हुआ है, वह सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। प्रसाद जी का नारी-सौन्दर्य चित्रण पंत जी की तरह भाव-प्रधान होते हुए भी कहीं अधिक मांसल है;

Scanned with CamScanner

लेकिन प्रसाद जी से भी इस विषय में आगे निराला हैं!

सामान्य नारी के सौन्दर्य का चित्रण तो सभी करते हैं, लेकिन वह नारी यदि स्वयं अपनी पुत्री हो तो कवि की परीक्षा हो जायेगी! स्वस्थमन और समर्थ कवि निराला के लिए ही यह संभव न हो सका कि उन्होंने अपनी पुत्री 'सरोज' की स्मृति में शोक-गीत लिखते हुए एक स्थल पर उसके सौन्दर्य का भी स्मरण किया है। विवाह के शुभ कलश का जल पड़ने के बाद वह आमूल नवल रूप—

तू खुली एक उच्छ्वास-संग
विश्वास-स्तब्ध बँध अंग-अंग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर

और कवि ने अनुभव किया कि—

श्रृंगार, रहा जो निराकार
रस कविता में उच्छ्वसित-धार
गाया स्वर्गीया-प्रिया-संग
भरता प्राणों में राग-रंग
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही
आकाश बदल कर बना मही।

अर्थात् 'सरोज' ही नहीं, बल्कि उसका रूप भी कवि की सृष्टि है—कवि के निराकार भाव ही जैसे रूप धारण करके 'सरोज' बन गये! भावात्मक दृष्टि से मूर्त रूप-चित्रण का यह उत्कृष्ट उदाहरण है—दृष्टिकोण अमूर्त है किन्तु दृश्य मूर्त है।

जब प्रसाद जी ने सौन्दर्य को 'उज्ज्वल वरदान चेतना का' कहा तो प्रकारान्तर से उन्होंने इसी भावात्मक दृष्टिकोण का समर्थन किया। इसी बात को रवीन्द्रनाथ ने अत्यन्त स्पष्ट ढंग से 'चैतालि' की 'मानसी' कविता में व्यक्त किया है—

शुधु विधातार सृष्टि नह तुम नारी।
पुरुष गड़ेछे तोर सौन्दर्य संचारि
आपन अन्तर होते।..............................

....

अर्धेक मानवी तुमि, अर्धेक कल्पना।

इस प्रकार महादेवी के शब्दों में 'सौन्दर्य की स्थूल जड़ता से मुक्ति मिलते ही नारी को प्रकृति के समान ही रहस्यमय शक्ति और सौन्दर्य प्राप्त हो गया जिसने उसके मानसिक जगत् से पिछली संकीर्णता धो डाली।'

लेकिन व्यक्तिवाद की तरह व्यक्तिनिष्ठ भावात्मक दृष्टिकोण में भी क्रमशः अतिरेक होता गया। कवि के अनुसार जब 'मन ही सर्वसृजन' है, तो उसने प्रकृति के वस्तुनिष्ठ रूप का सर्वथा निषेध करके उसके स्थान पर एकदम मानसिक

Scanned with CamScanner

प्रकृति खड़ी कर दी। ऐसा पंत जी के यहाँ प्रायः हुआ है। उनकी 'चाँदनी' धीरे-धीरे कपूर-सी उड़ती-उड़ती इतनी अदृश्य हो गयी कि अन्त में हैरान कवि को कहना पड़ा कि—

वह है, वह नहीं, अनिर्वच !

जब तक वह 'लघु परिमल के घन-सी' थी तब तक तो गनीमत थी; लेकिन अन्त में वह 'अनुभूति-मात्र-सी उर में' रह गयी। भाव-वादी दृष्टिकोण की यह पराकाष्ठा है!

प्रकृति की तरह नारी भी इस भाववादी दृष्टिकोण के अतिरेक का शिकार हुई। एक ओर 'निराला' के यहाँ—

वह विचर रही थी सानस की प्रतिमा-सी

तो पंत के मुख से

बन गई मानसि तुम साकार!

उच्चरित होकर भी वह मूलतः 'मानसी' ही रही।

इन्हीं सब बातों को देखकर आलोचकों ने छायावाद को 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' कहा।

व्यक्तिवाद के मूल से छायावाद में जो तीसरी बात पैदा हुई, वह है भावुकता। सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध यदि सामूहिक विद्रोह होता तो इतना असंतोष और निराशा का अनुभव न होता; किन्तु छायावादी कवि का विद्रोह वैयक्तिक था। इसलिए स्वभावतः उस एकाकी संघर्ष में उसे पद-पद पर पराजय और निराशा का अनुभव हुआ, दुःख उसका सहचर बन गया। छायावाद की आरम्भिक कविताओं में 'उच्छ्वास' और 'आँसू' का बाहुल्य इसीलिए है। कवि की इस मनःस्थिति को उसकी असामाजिकता तथा एकान्तप्रियता ने और भी गहरे विषाद से रँग दिया। जिन कवियों में स्पष्ट 'उच्छ्वास' और 'आँसू' नहीं हैं; उनमें एक विलक्षण प्रकार का 'विषाद' दृष्टिगोचर होता है। 'प्रसाद' के झरना का 'विषाद' तथा उनके 'स्कन्दगुप्त' की अवसाद और उदासी से मिली-जुली विषण्ण मनःस्थिति ऐसी ही है! 'कामायनी' के एकाकी मनु की आरम्भिक 'चिन्ता' और निराशा इसी विषाद के दूसरे पहलू हैं। पंत जी का 'उन्मन गुञ्जन' भी ऐसा ही कुछ है।

बात यह है कि आधुनिक परिस्थितियों ने इस युग के व्यक्ति को अत्यधिक संवेदनशील बना दिया; वह अपने उल्लास, आह्लाद, व्यथा आदि किसी को भी दबा सकने में असमर्थ था। इन भावों की व्यंजना, यों तो पहले के कवियों ने भी की है, किन्तु उनके एक प्रकार के संयम और मर्यादा का अनुभव होता है। कबीर, सूर, तुलसी के करुणा-विगलित आर्त आत्म-निवेदन में भी परिणत वय और धीर स्वभाव का संयम है। किन्तु छायावादी कवि में उच्छल भावुकता का अबाध

Scanned with CamScanner

उद्‌गार है; यहाँ तक कि भावुकता छायावाद का पर्याय हो गयी। आमतौर से लोगों में छायावादी कहने के माने ही था किसी को अत्यंत भावुक कहना!

निःसन्देह विकास-क्रम में यह भावुकता धीरे-धीरे कम होती गयी और कैशोर भावुकता का स्थान प्रौढ़ चिंतन ने ले लिया।

लेकिन अतिरिक्त-सी प्रतीत होने वाली इस कैशोर भावुकता ने छायावादी कवि को ऐसी अन्तर्दृष्टि दी जिसे कल्पना-शक्ति कहते हैं। यों तो यह कह सकना कठिन है कि भावुकता ने कल्पना-शक्ति को जाग्रत किया या कल्पना-शक्ति ने भावुकता को; फिर भी यह निश्चित है कि छायावादी भावुकता और कल्पना में अन्योन्याश्रित और अभिन्न सम्बन्ध है। कविता में भावाभिव्यंजन और कल्पनाकलन पहले भी हुआ है, परन्तु भाव-प्रबलता से प्रेरित कल्पना-शक्ति का जो वैभव छायावादी कविता में दिखाई पड़ा वह अभूतपूर्व है। छायावादी कवि इस रोमैंटिक अथवा स्वच्छंद कल्पना को केवल 'कल्पना' नाम से ही पुकारते थे। संभवतः 'कल्पना' शब्द का जितना अधिक प्रयोग और उसकी जितनी लोकप्रियता छायावाद के द्वारा मिली, उतनी पहले कभी न मिली थी। छायावाद-युग में 'कल्पना' कविता का पर्याय हो गया। निराला ने कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कहा और पंत ने अपने 'पल्लव' की कविताओं को 'कल्पना के से विह्वल बाल'।

छायावादी कवियों के लिए कल्पना बिल्कुल बुनियादी चीज थी—कल्पना उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी, उनकी कल्पना-शक्ति को दबाने का अर्थ था स्वयं उनके व्यक्तित्व को दबाना। कल्पना ही उनकी वह शक्ति है जिसके द्वारा वे अपने बन्धनों की सीमा में रहते हुए भी उन्मुक्त आकाश में विचरण करने का सुख लेते थे। कल्पना छायावादी कवि के मन की पाँख थी; वह उसकी स्वतंत्रता, मुक्ति, विद्रोह, आनंद आदि की आकांक्षाओं की प्रतीक थी।

कल्पना के द्वारा एक ओर वह अतीत में जा पहुँचा था, दूसरी ओर भविष्य के स्वर्ण-युग को आँखों के सामने साकार करता था; एक ओर असीम आकाश में उड़कर आनन्द-लोक बसाता था, दूसरी ओर वस्तुगत रहस्यों का पता लगता था। कल्पना उसकी राग-शक्ति भी थी और बोध-शक्ति भी।

कल्पनाशक्ति का उपयोग प्राचीन और मध्ययुग के कवियों ने भी किया है और इसके द्वारा काव्य में अत्यंत रमणीय अप्रस्तुत-विधान की सृष्टि की है। कविता में प्रस्तुत के लिए जो अप्रस्तुत की योजना की जाती है, वह कल्पना का ही व्यापार है; मार्मिक उपमाओं के भावक कालिदास की कल्पना-शक्ति को इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन आधुनिक छायावादी कविताओं के साथ कालिदास की रचनाओं को मिलाकर देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कल्पना कालिदास के लिए गौण वस्तु थी—वास्तविकता ही उसका प्रधान लक्ष्य था।

Scanned with CamScanner

कालिदास का 'मेघ' पंत के 'बादल' से अधिक वास्तविक और कम कल्पना-बाहुल है। 'मेघदूत' में मेघ के लिए जगह-जगह निःसन्देह बड़ी ही मनोरम उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ लायी गयी हैं, लेकिन अन्ततः उससे रामगिरि से लेकर कैलास तक की भारतभूमि की यात्रा करायी गयी है। कालिदास का मेघ उत्तर भारत की नदियों और पहाड़ों को ही देखता हुआ कैलास नहीं पहुँच जाता बल्कि विदिशा, उज्जयिनी, दसपुर आदि प्रसिद्ध नगरों को भी देखना नहीं भूलता—यहाँ तक कि उज्जयिनी उसके रास्ते में नहीं पड़ती फिर भी उस महानगरी के लिए मेघ थोड़ा घूम जाता है। वास्तविकता की ओर कालिदास का ध्यान इतना था कि नगरों के अतिरिक्त जनपदों से भी अपने मेघ को जाने का आदेश देते हैं—उन्हीं जनपदों में से एक है मालवा, जिसके तुरन्त जोते हुए खेतों से उठने वाली सोंधी गंध से गुजरते हुए मेघ का सौन्दर्य वहाँ की जनपद-वस्तुओं के लोचनों से लिया जाता है। जनपदवासियों को स्नेह करने वाले कालिदास मेघ से आग्रह के साथ कहते हैं कि फूल चुनते-चुनते जो मालवी मालिनियाँ थक गयी हैं और पसीने के कारण जिनके कर्णफूल कुम्हला गये हैं, उनका पसीना अवश्य पोंछ देना।

लेकिन पंत जी का वायवी 'बादल' यही नहीं कि इस धरती से सर्वथा अनजान है, बल्कि स्वयं भी अधिकांशतः कल्पना-पुंज है। इस 'बादल' का परिचय स्वयं उसी के शब्दों में—

> **हम सागर के धवल हास हैं**
> **जल के धूम, गगन की धूल**
> **अनिल फेन, ऊषा के पल्लव**
> **वारिवसन, वसुधा के मूल;**
>
> **नभ में अवनि, अवनि में अम्बर,**
> **सलिल भस्म, मारुत के फूल**
> **हम ही जल में थल, थल में जल**
> **दिन के तम, पावक के तूल।**

किसी वस्तु को देखकर यदि प्राचीन कवि को अधिक-से-अधिक उस वस्तु से मिलती-जुलती अथवा उससे संबद्ध दो-एक अन्य अप्रस्तुत वस्तुओं की ही याद आती थी, तो छायावादी कवि के मन में सैकड़ों 'एसोसिएशन्स' अथवा स्मृति-चित्र जग जाते थे। 'यमुना' को देखकर यदि बिहारी ने इतना ही कहा था कि—

> **सघन कुंज छाया सुखद, शीतल सुरभि समीर।**
> **मन है जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥**

Scanned with CamScanner

तो निराला के मन में यमुना से सम्बन्धित सैकड़ों स्मृति-चित्र उभर आये और 'यमुना' के किनारे उन्होंने कल्पना की एक दूसरी ही सृष्टि खड़ी कर दी। वस्तुतः निराला ने वर्तमान यमुना पर एक दूसरी 'यमुना' बहा दी और यह यमुना अतीत की यमुना का संस्मृत नवीन संस्करण है।

अतीत की ओर यह स्नेह-मुग्ध दृष्टि और उसे पुनर्जीवित करके लौटा लाने की आकुलता कल्पना के ही अनेक व्यापारों में से एक है—कवि यमुना से कहता है—

किस अतीत का दुर्जय जीवन
अपनी अलकों में सुकुमार
कनक-पुष्प-सा गूँथ लिया है
किसका है यह रूप अपार?

और फिर इस कल्पना-कलित यमुना के आदि स्रोत का पता पूछते हुए कवि कहता है—

किस अतीत से मिला आज वह
यमुने तेरा सरस प्रवाह!

और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि निराला की इस यमुना का आदि स्रोत कल्पना का अतीत शिखर है, वर्तमान हिमालय नहीं!

इस परिवर्तित परिस्थिति की विभीषिका से घबड़ाकर पंत जी स्वर्णिम अतीत को पुकार उठते हैं—

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन वह सुवर्ण का काल
भूतियों का दिगन्त छवि जाल!

और प्रसाद तो जैसे अतीत-प्रवासी ही थे। महाप्रलय में विनष्ट देव-सृष्टि की मधुमय याद करते हुए प्रसाद के मनु कराह उठते हैं—'गया, सभी कुछ गया, मधुरतम!' यह वह सृष्टि थी जिसमें 'चलते थे सुरभित अंचल से जीवन के मधुमय निश्वास', और 'सौरभ से दिगन्त पूरित था अंतरिक्ष आलोक अधीर!'

अतीत में मन की यह उड़ान वर्तमान से असन्तोष का ही परिणाम है।

जिस प्रकार वर्तमान से असंतुष्ट मन अतीत की ओर भागता है, उसी तरह इस जगत् से असंतुष्ट होकर किसी अन्य जगत् की खोज में निकल पड़ता है और न मिलने पर कल्पना के द्वारा एक सुखद लोक की सृष्टि कर डालता है। छायावाद-युग में 'उस पार' और 'क्षितिज के उस पार' जैसी बातें जो अक्सर सुनाई पड़ती थीं, वे इसी भावना की अभिव्यक्ति थीं। 'परिमल' में निराला स्पष्ट रूप से कहते हैं—'हमें जाना है जग के पार!' और 'कामायनी' के मनु जब आह भरते हैं—

Scanned with CamScanner

आह, कल्पना का सुन्दर वह
जगत मधुर कितना होता!
सुख स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता-सोता।

तो उसी कल्पना-लोक की ओर संकेत करते हैं।

कभी-कभी बिना किसी प्रकार के तात्कालिक असंतोष के ही किसी सुन्दर दृश्य को देखकर मन दृश्य-जगत् से परे कल्पना के अदृश्य में जा पहुँचता है, जैसे निराला के 'तुलसीदास' को चित्रकूट की प्राकृतिक सुषमा देखते ही पंख लग जाते हैं—

वह उस शाखा का वन-विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निरस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन

छायावाद में जो 'स्वप्नों' की बहुत चर्चा है, वह या तो ऐसे ही 'दिवास्वप्न' के रूप में अथवा जीवन-संघर्षों में थके हुए मन के सो जाने पर आये हुए सुखद स्वप्न के रूप में। जिस प्रकार छायावाद-युग की अधिकांश प्रतिमाएँ छायाजीवी हैं, उसी तरह अधिकांश पात्र स्वप्नजीवी हैं; यहाँ तक कि निराला के राम भी उनके 'तुलसी' की तरह रह-रहकर स्वप्नों में डूब जाते हैं—कभी उनकी आँखों में पृथ्वी-तनया—कुमारिका-छवि कौंध जाती है कभी सामने का भूधर पार्वती-सा प्रतीत होने लगता है और अन्त में कल्पना की 'शक्ति' प्रकट होकर उन्हें वरदान दे जाती है। जीवन-संघर्षों में हारता हुआ व्यक्ति किसी प्रकार के कल्पना के द्वारा शक्ति अर्जित करता है अथवा आत्मविश्वास के लिए विजय की कल्पना करता है—'राम की शक्ति-पूजा' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

दूसरी ओर प्राकृतिक सौन्दर्य कवि की कल्पना को किस प्रकार जाग्रत करता है और उसे जगत्-जीवन को समझने की अंतर्दृष्टि देता है इसका उत्कृष्ट उदाहरण निराला का 'तुलसीदास' है। भारत की तत्कालीन वास्तविक स्थिति का बोध इस तुलसीदास को कल्पनालोक में ही होता है।

अन्तर्दृष्टि-दायिनी कल्पना और जीवन-शक्ति-दायिनी कल्पना—इन दोनों की सुन्दर अभिव्यंजना छायावादी काव्य में हुई है। प्रकृति-सौन्दर्यजनक कल्पना ने ही 'कामायनी' की चिन्ता पर मनु के मन में आशा का संचार किया और जीवन से निराश हृदय में जिजीविषा जगायी! मन अनुभव करने लगे—

'मैं हूँ' यह वरदान सदृश क्यों
लगा गूँजने कानों में।
मैं भी कहने लगा, 'मैं रहूँ'
शाश्वत नभ के गानों में।

Scanned with CamScanner

छायावाद युग की कविताओं को देखने से पता चलता है कि उन कवियों को संसार में वस्तु सबसे अधिक सुन्दर, उदात्त, मधुर अपराजेय अर्थात् किसी बात में श्रेष्ठ हुई है, उसे उन्होंने 'कल्पना' नाम दिया है अथवा कल्पना से उपमित किया है। पंत जी यदि बादल को 'विपुल कल्पना से त्रिभुवन की', 'अंबुधि की कल्पना महान्' आदि कहते हैं; 'नक्षत्र' की 'ऐ अनन्त की अगम कल्पना' बतलाते हैं, 'छाया' को भी 'गूढ़ कल्पना-सी कवियों की' मानते हैं; तो 'अनंग' को 'प्रथम कल्पना कवि के मन में' और 'अप्सरा' को भी 'अखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि' सम्बोधन करते हैं। इसी तरह प्रसाद जी भी हिमालय की उदात्तता बतलाने के लिए यही उपमान चुनते हैं—'विश्व कल्पना-सा ऊँचा वह!'

तात्पर्य यह कि कल्पना छायावादी कविता की मौलिक विशेषता है। इसी ने कवि को रहस्यदर्शी बनाया; असीम और अनन्त की सार्वभौम अनुभूति दी; अतिपरिचित वस्तुओं में भी अपरिचित सौन्दर्योद्घाटन की अन्तर्दृष्टि दी तथा विरूप वस्तुओं को भी रूपमय बनाने की क्षमता प्रदान की, इसी ने कवि में नवीन ऐन्द्रिय-बोध जगाये और अभूतपूर्व संवेदनशीलता उभारी।

छायावाद के अनुभूति-प्रवण कवियों ने वर्ण, ध्वनि, गंध, स्पर्श, रस आदि के अत्यन्त सूक्ष्म ऐन्द्रिय-बोध का परिचय दिया। 'अग्निशिखा' के रंग को स्पष्ट करते हुए प्रसाद जी उसी 'मधु पिंगल तरल अग्नि' कहते हैं तो हिम-संसृति पर पड़ते हुए आलोक का वर्ण-सौन्दर्य दिखलाने के लिए इस प्रकार की कल्पना करते हैं—

सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।

इसी प्रकार अरुण अधर पर धवल मुस्कान की वर्णच्छायाएँ अलगाते हुए कहते हैं कि जैसे रक्त किसलय पर—

अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।

दूसरी ओर पंत जी नील लहरों पर सांध्य किरण के बुझते हुए आलोक का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं—

लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर पड़ गयी नील ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।

वर्ण-विवेक की तरह छायावादी कवियों ने ध्वनि-सम्बन्धी सूक्ष्मताओं की ओर भी ध्यान दिया। सन्नाटे की विचित्र-सी आवाज को शब्दों में पंत जी इस प्रकार रखते हैं—

गुंजित अलि-सा निर्जन अपार!

अथवा सान्ध्य वन के क्रमशः थमते हुए रव का यह चित्र—

Scanned with CamScanner

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर!

और पावस-कालीन पपीहा, झींगुर, दादुर, बादल, बूँदें, निर्झर आदि से उठने वाले विभिन्न प्रकार के स्वरों का यह चित्र—

पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों का भारी झर् झर्
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु-गम्भीर-घहर
बिन्दुओं की छनती-छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर।
हृदय हरते हैं विविध प्रकार
शैल-पावस के प्रश्नोत्तर।

ऐन्द्रिय-बोध के अतिरिक्त अन्तर्दृष्टिदायिनी कल्पना के मन में अनेक प्रकार की सूक्ष्म अनुभूतियाँ तथा उन अनुभूतियों को अच्छी तरह व्यक्त करने की क्षमता जगायी।

जैसे सुधि में प्रिया के साथ की हुई बातों को दुहराना—

पूर्व सुधि सहसा जब सुकुमारि!
सरल-शुक-सी सुखकर-सुर में!
तुम्हारी भोली बातें
कभी दुहराती है उर में

(पल्लव : आँसू)

अथवा नव-परिचय के क्षण की सतत् रहस्यमयता—

नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष
गूढ़ अन्तर का छिपा रहता रहस्य विशेष
दूर जैसे सघन वन अन्त वन-पथ का आलोक
सतत होता जा रहा हो, नयन की गति रोक।

(कामायनी : वासना)

अथवा प्रणय के प्रथम उदय-काल की मन:स्थिति—

दूर थी,
खिंचकर समीप ज्यों मैं हुई
अपनी ही दृष्टि से,
जो था समीप विश्व
दूर दूरतर दिखा।

(अनामिका : प्रेयसी)

Scanned with CamScanner

इस तरह की अनुभूतियों की सूक्ष्मता प्रसाद जी की 'कामायनी' और 'प्रलय की छाया' जैसे लम्बी कविताओं में काफी मिलेगी।

लेकिन इस कल्पना ने एक ओर छायावाद में जहाँ इतनी विशेषताएँ पैदा कीं, वहाँ दूसरी ओर जब धीरे-धीरे इसका अतिरेक होने लगा तो कल्पना-प्रवण अन्तर्दृष्टि अधिक गहन, गूढ़ और रहस्यमय हो गयी; फलतः गहराई की जगह दुर्बोध उलझनों तथा अस्पष्ट भावों की सृष्टि होने लगी। प्रसाद जी की 'कामायनी' में ऐसे स्थल काफी हैं। कल्पना की ऊँची उड़ान से कभी-कभी वस्तु चित्रण में भी अस्पष्टता आयी जैसे पंत जी की 'अप्सरा' में। परंतु निराधार कल्पना के विकार अधिक प्रकट हों, इसके पहले ही यथार्थवाद की तीव्र आँच से छायावादी 'आइकेरस' के कल्पना के मोमी पंख पिघलने लगे और 'छत्तीस तक जाते-जाते अपने आप कविता में कल्पनाशक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी।'

छायावाद की इस स्वानुभूति, भावुकता, कल्पना आदि से अपने अनुकूल शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, प्रतीक-योजना तथा छन्द-गठन भी किया।

छायावाद को उत्तराधिकार में द्विवेदी-युग में इतिवृत्तात्मक शब्द-समूह प्राप्त हुआ था जिसके द्वारा न तो वैयक्तिक अनुभूति की भावुक अभिव्यंजना हो सकती थी और न वस्तुगत सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण हो सकता था, परन्तु छायावादी भावुकता का विद्युत-स्पर्श होते ही कल्पना के पंखों का सहारा पाकर जड़ भाषा उन्मुक्त आकाश में उड़ चली। अतीत-यात्रा में कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट आदि संस्कृत कवियों की ललित पदावली मन के साथ लिपटी हुई चली आयी। अपने मध्ययुगीन ब्रजभाषा-काव्य के भी अनेक शब्द, जो संस्कार-स्वरूप अवचेतन में पड़े हुए थे, ऊपर आ गये। रवीन्द्रनाथ की संस्कृत-शाद्वल बँगला कविताओं की गूँज ने भी नवीन शब्दों का वातावरण तैयार कर दिया। अंग्रेजी की रोमैंटिक कविताओं को पढ़ते-पढ़ते भी काफी शब्द मन ही मन अनूदित होते रहे। इस प्रकार पतझर की भाषा देखते-देखते कुसुमित शब्दों से लद गयी। शब्दों के चयन और निर्माण में छायावादी कवियों ने कितना श्रम किया, इसका कुछ आभास शब्द-शिल्पी पंत जी की 'पल्लव' की 'भूमिका' से हो सकता है। फिर भी छायावादी कविता का शब्द-सौन्दर्य उसके स्वतन्त्र शब्दों में उतना नहीं है जितना शब्दों के लयमय क्रम में है। अलग-अलग लेने पर वे शब्द प्रायः संस्कृत के काव्यों अथवा कोशों में मिल जायेंगे; लेकिन यदि उन्हीं शब्दों को कविता के संगीतमय क्रम में देखें तो पता चलेगा कि यह शब्द-मैत्री तथा लय अभूतपूर्व है। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी की रचना से एक-एक उदाहरण लेकर इसको स्पष्ट किया जा सकता है—

Scanned with CamScanner

पंत :

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर
विहंग कुल की कलकंठ हिलोर
मिला देती भू नभ के छोर

प्रसाद :

मधुमय वसंत जीवन वन के
वह अंतरिक्ष की लहरों में

कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में।

महादेवी :

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली।

निराला :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे

इन चारों उद्धरणों से सम्पूर्ण छायावादी काव्य के शब्द-चयन का यों पता नहीं चल सकता, लेकिन मुख्य प्रवृत्ति का आभास मिल सकता है। इसके अतिरिक्त चारों कवियों की विशिष्ट रुचियों का भेद भी मालूम हो जाता है। पन्त के शब्द अपेक्षाकृत छोटे, असंयुक्त वर्णवाले, हल्के तथा वायवी हैं। प्रसाद के शब्द अधिक प्रगाढ़, मधुमय और नादानुकृतिमय हैं। महादेवी के शब्दों में रुपये की-सी स्पष्ट ठनक और खनक है और निराला में सन्धि-समास युक्त विविध जाति और ध्वनिवाले शब्दों में भी अनुप्रासमय व्यंजन-संगीत उत्पन्न करने की चेष्टा है। छायावाद के इन चारों कवियों में निराला को छोड़कर शेष तीनों में सर्वत्र अपने-अपने ढंग के प्राय: एक से शब्दों का संकल्प मिलता है; केवल निराला में शब्द-चयन की विविधता तथा अनिश्चितता है।

छायावादी कविता के शब्द-समूह का दूसरा पहलू वह है जहाँ अतिशय शब्द-मोह दिखायी पड़ता है। मधुर ध्वनिवाले शब्दों के मोह में पड़कर छायावादी कवियों ने प्राय: आवश्यकता से अधिक शब्दों का व्यय किया है। जिस प्रकार

Scanned with CamScanner

छायावादी कविता में अनावश्यक कल्पना-बाहुल्य मिलता है, उसी प्रकार अनावश्यक शब्दों की फिजूलखर्ची भी दिखायी पड़ती है। फिर भी भावों का क्षेत्र सीमित होने के कारण छायावाद का शब्द-कोश काफी सीमित है।

भावोच्छ्‌वास की प्रधानता के कारण छायावादी वाक्य-प्रवाह में शब्दों का क्रम प्राय: गड़बड़ा गया। प्रसाद की भाषा में इस तरह के दूरान्वयवाले वाक्य बहुत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त भाषा को कोमल बनाने के लिए प्राय: सभी छायावादी कवियों ने 'है', 'था' आदि सहायक क्रियाओं का बहिष्कार किया। इस पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए 'पल्लव' की भूमिका में पन्त जी लिखते हैं, 'खड़ी बोली की कविता में क्रियाओं और विशेषत: संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग कुशलता पूर्वक करना चाहिए, नहीं तो कविता का स्वर (एक्सप्रेशन) शिथिल पड़ जाता है और खड़ी बोली की कविता में यह दोष सबसे अधिक मात्रा में विराजमान है। 'है' को तो जहाँ तक हो सके निकाल देना चाहिए, इसका प्रयोग प्राय: व्यर्थ ही होता है।

फलत: कभी-कभी इस प्रकार के निष्क्रिय वाक्यों की श्रृंखला दिखाई पड़ती है—

तरुवर के छायानुवाद सी
उपमा सी, भावुकता सी
अविदित भावाकुल भाषा सी
कटी छँटी नव कविता सी

यह है आगे-पीछे दोनों ओर से कटी-छँटी नव कविता की भावाकुल भाषा का एक नमूना। लेकिन ऐसा प्राय: कम ही हुआ है।

शब्द चयन की तरह छन्द और काव्य-संगीत के क्षेत्र में भी छायावादी भावावेग ने नई दिशाएँ खोज निकालीं। छायावाद से पहले के कवियों की सारी शक्ति खड़ी बोली की स्वाभाविक छन्द:प्रवृत्ति तथा छन्द प्रकृति की खोज में लग गयी और पर्याप्त श्रम के बाद लावनी, संस्कृत के अतुकान्त वर्णवृत्त आदि बँधे चरणों वाले छन्द निश्चित किये गये। छायावादी कवियों ने इस बँधी परिपाटी के विरुद्ध पहली स्थापना यह की कि छन्द:प्रकृति का मौलिक आधार है भाव-लय। छायावाद के भावुक कवि ने अनुभव किया कि पूर्ववर्ती कवियों की तरह छन्दों के साँचे के अनुसार भावों को मोड़ना भावों के साथ अन्याय करना है। इसलिए उसने विविध भाव-लय के अनुसार छन्द-लय और भाव-प्रवाह के अनुसार चरणों का आकार परिवर्तित किया। पंत जी के 'उच्छ्‌वास' में भावानुकूल छन्द के लय और चरणों का द्रुत परिवर्तन द्रष्टव्य है—

सिसकते अस्थिर मान से
बाल बादल सा उठकर आज
सरल अस्फुट उच्छ्‌वास।

Scanned with CamScanner

अपने छाया के पंखों में
(नीरव घोष भरे शंखों में)
मेरे आँसू गूँथ फैल गम्भीर मेघ सा
आच्छादित कर ले सारा आकाश।

इन सात पंक्तियों में लगभग छः जगह छन्द में मोड़ आये हैं। पीछे इस द्रुत परिवर्तन से भाव-प्रवाह में बाधा पड़ते देख कवि ने छन्द-संगति की ओर विशेष ध्यान दिया।

छन्दोविधान में भाव-विवेक के आगमन से स्वच्छन्द छन्द अथवा मुक्त छन्द का प्रचलन हुआ और निरालाजी इसके प्रवर्तक हुए। भावों के स्वच्छन्द विकास के लिए कवि ने चरण और तुक सबके बंधन ढीले करके केवल स्वर प्रवाह की रक्षा की। इस तरह प्राचीन घनाक्षरी छन्द के स्वर-प्रवाह में निराला ने अनेक मुक्तछन्द लिखे। निराला के लिए छन्द सचमुच ही छन्द (बन्धन) प्रतीत हुआ, इसलिए उन्होंने स्वच्छन्दतावाद के लिए छन्दों के बन्धन को भी तोड़ना अनिवार्य समझा। उनकी 'जूही की कली' ऐसे ही मुक्तछन्द में खुली। उन्होंने कविता से प्रगल्भ होकर कहा कि 'जा तू प्रिये छोड़कर बन्धनमय छन्दों की राह'।

इस तरह लम्बे भावों के लिए लम्बी कविताओं के छन्दोविधान के अतिरिक्त छोटे-छोटे भावों के लिए छायावाद ने लोकगीतों के आधार पर गीतों की रचना की। हिन्दी में सफल प्रगति की रचना सबसे पहले छायावाद-युग में हुई। निराला और महादेवी वर्मा ने इस दिशा में सबसे अधिक काम किया। छन्दोवैचित्र्य की दृष्टि से संभवत: निराला की देन सबसे अधिक है।

अलंकार-योजना की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती द्विवेदी-युग की तुलना में तो छायावाद आगे है ही, संपूर्ण हिन्दी काव्य में भी इसे अद्वितीय कहा जा सकता है। प्राचीन काव्य के पक्षधर आचार्य शुक्ल ने भी स्वीकार किया है कि छायावादी कवियों ने लाक्षणिक साहस सबसे अधिक दिखाया। उनके अनुसार, 'आभ्यंतर प्रभाव-साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक-पद्धति का प्रचुर विकास छायावाद की काव्य-शैली की असली विशेषता है।'

कल्पना-प्रधान काव्य में अनूठी उपमाओं और प्रतीकों का बाहुल्य तथा भाव-विदग्ध हृदय में लाक्षणिक वक्रता-भरी भाषा का निकलना स्वाभाविक है।

स्वभाव की शीतलता बतलाने के लिए 'चाँदनी का स्वभाव में वास' कहना और विचारों का भोलापन दिखाने के लिए 'विचारों में बच्चों को साँस' लिखना नूतन प्रतीक-व्यंजन का उदाहरण है।

इसी प्रकार गद्‌गद स्वर के आह्लाद की अभिव्यक्ति के लिए 'खिला पुलक

Scanned with CamScanner

कदम्ब-सा था भरा गद्‌गद बोल' और प्रवासिनी-प्रिया की मधुर याद को प्रकट करने के लिए प्रिया को दूर की तान से उपमित करना नवीन औपम्य-विधान के सूचक हैं। प्रवासित 'रत्नावली' के लिए निराला की यह उपमा देखिए—

वह आज हो गयी दूर तान
इसलिए मधुर वह और गान

छायावादी कवियों—विशेषत: पंत जी ने विशेषणों के प्रयोग में अद्‌भुत चमत्कार पैदा किया। एक छोटे से विशेषण के द्वारा पंत जी ने कई वाक्यों में कही जाने योग्य बात कह दी है। नील झंकार, गंध-गुंजित, तुतला उपक्रम, मूर्च्छित आतप, तुतला भय, तुमुल तम जैसे सैकड़ों विशेषण-जन्य सुन्दर प्रयोग पंत में अनायास मिलेंगे।

चित्रात्मकता छायावादी कविता की बहुत बड़ी विशेषता है। विराट् उपमाओं के सहारे कभी-कभी बड़े ही मनोरम चित्रों की रचना की गयी—जैसे महादेवी के ये दो चित्र—

अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
अरल मोती-सा जलधि जब काँपता

और

तम-तमाल ने फूल
गिरा दिन पलकें खोलीं

इन सबका महत्त्व स्वीकार करते हुए भी पन्त जी के शब्दों में कहना है कि छायावाद 'काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।'

(४)

छायावाद के बारे में प्राय: कहा जाता है कि इनका संबंध तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन से कतई न था। आलोचकों का बड़ा पुराना आरोप है जिस समय देश में स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष हो रहा था, छायावादी कवि कल्पना-लोक में बैठकर हृत्तंत्री के तार बजाया करते थे, लेकिन ऐसा वही लोग कहते हैं जो साहित्य को समाज का अविकल अनुवाद समझते हैं। अच्छी तरह से देखने से पता चलेगा कि छायावाद ने अपने युग को अत्यन्त आवश्यक रूप में अभिव्यक्त किया है।

वस्तुत: हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के दो मोर्चे थे। एक मोर्चा प्राचीन सामन्ती मर्यादाओं के विरुद्ध था और दूसरा अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध। छायावाद का व्यक्ति-स्वातंत्र्य सामंती मर्यादाओं के विरुद्ध बहुत बड़ा कदम था। निराला के 'पंचवटी-प्रसंग' में राम सीता से आधुनिक युवक के हृदय की बात कहते हैं—

छोटे से घर की लघु सीमा में
बँधे हैं क्षुद्र भाव

Scanned with CamScanner

यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोनिधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर।

राजनीतिक और आर्थिक रूप में यही व्यक्ति स्वातंत्र्य शोषित कृषकों का पक्ष लेकर विप्लव के बादल का आह्वान करता था।

विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते
तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लव के वीर!

सामंती रूढ़ियों से नारी को मुक्त करके भी छायावादी कवि ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग दिया। तिरस्कृता विधवा को 'इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी' पवित्र कहना, भोग्या नारी के 'संग में पावन गंगा-स्नान' की कल्पना करना और उसे 'देवि, माँ, सहचरि, प्राण' कहकर पुकार उठना आदि बातें आधुनिक कवि के नारी आदर्श की सूचक हैं। छायावादी कवि ने नारी को अपमान के पंक और वासना के पर्यंक से उठाकर देवी और सहचरी के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया। नैतिकता की पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर उसने मानव-विवेक पर आधारित प्रेम सम्बन्धी नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की; सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म-संस्कार का बीजारोपण किया, मध्यवर्ग को व्यावसायिक प्रयोजनशीलता तथा अत्यन्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण से मुक्त कर आदर्शवाद के उच्च आकाश में विचरण करने की प्रेरणा दी।

जहाँ तक साम्राज्य विरोधी मोर्चे का सवाल है, इस पर छायावादी ने स्पष्ट रूप से अंग्रेजों का विरोध तो नहीं किया, लेकिन परोक्ष रूप से साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश-प्रेम; जागरण तथा आत्मगौरव का गान गाया। भारत-भूमि की प्रशंसा में प्रसाद का गाया हुआ गीत—

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ-विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर
फैला जीवन-हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।

देश-प्रेम की भावप्रवण व्यंजना है।

इसी तरह प्रसाद का ही एक जागरण-गीत है—

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती!

Scanned with CamScanner

और अपने देशवासियों को जगाने के लिए ही छायावादी कवि अतीत गौरव का स्मरण कराते हुए कहता है—

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार

उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।

इन्हीं गीतों को ध्यान में रखते हुए महादेवी जी ने कहा है कि राष्ट्रीय भावना को लेकर लिखे गये जय-पराजय के गान स्थूल धरातल पर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियों में जो मार्मिकता ला सके हैं वह किसी और युग के राष्ट्रगीत दे सकेंगे या नहीं इसमें सन्देह है।

परन्तु छायावाद में जहाँ एक ओर सामंती और साम्राज्य मान्यताओं के विरुद्ध इस प्रकार का भावात्मक विद्रोह है वहीं दूसरी ओर इनसे पलायन की भी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। महादेवी जी छायावाद को 'प्रकृति के बीच जीवन का उद्‌गीथ' भले ही कहें, किन्तु छायावादी कविता में प्रस्तुत और अप्रस्तुत रूप में प्रकृति की ही प्रधानता है। छायावादी कवि ने सामंती सामाजिकता के विरुद्ध आधुनिक व्यक्ति-स्वातंत्र्य का नारा तो अवश्य उठाया, लेकिन उसने वह व्यक्ति-स्वातंत्र्य प्रकृति के सरल वातावरण में प्राप्त करना चाहा। समाज से व्यक्ति को स्वतंत्र करके विकसित व्यक्तियों के आधार पर स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था करने की जगह उसने प्रकृति की आदिम और सरल व्यवस्था की कल्पना की। यह उसकी अतिशय व्यक्तिवादिता तथा असामाजिकता है।

इसी प्रकार उसने नारी को भी मुक्त करने की घोषणा तो की, किन्तु उसे भी या तो एकदम अप्सरा बना दिया अथवा निष्प्राण देवी। बिना किसी ठोस आधार के उसका नारी-मुक्ति-आन्दोलन नारी के लिए दूसरा कारागार बन गया। इस बार नारी पुरुष के स्वच्छन्द प्रेम का शिकार होने के लिए ही मुक्त हो गयी।

असीम और अनंत के नाम पर छायावादी कवि ने सार्वभौम भावना का तो प्रसार किया, किन्तु उसी असीम और अनंत को अपने पलायन का विश्राम-स्थल भी बना लिया। क्षुद्र आवश्यकताओं से ऊपर उठकर उसने उच्च आदर्शवाद का पाठ तो अवश्य पढ़ाया, लेकिन फिर कोरे आदर्शवाद की पट्टी बाँधकर आँखों के सामने से वस्तुस्थिति को ओझल कर दिया।

परन्तु ये सभी सीमाएँ प्राय: उस युग के सम्पूर्ण मध्यवर्ग की हैं। उस युग के मध्यमवर्गीय विचारों के प्रतिनिधि गाँधीवाद में भी इसी तरह की असंगतियाँ दिखाई पड़ती हैं।

(५)

यों तो छायावाद संज्ञा कविता के लिए ही प्रयुक्त होती है, तथापि यह एक व्यापक जीवन-दृष्टि थी। इसकी अभिव्यक्ति कविता के ही क्षेत्र में सबसे अधिक

Scanned with CamScanner

हुई; परन्तु कहानी, उपन्यास, नाटक यहाँ तक कि आलोचना भी इससे काफी प्रभावित हुई। प्रसाद के नाटक, कहानियाँ और उपन्यास छायावादी दृष्टिकोण के प्रभाव को अच्छी तरह प्रकट करते हैं। अन्य कवियों में निराला के 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' आदि उपन्यास, महादेवी जी के 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' तथा पंत जी की कहानियाँ भी इससे प्रभावित हैं। सभी छायावादी कवियों तथा अन्य प्रभाववादी आलोचकों के आलोचनात्मक निबंधों पर भी छायावादी दृष्टि का प्रभाव स्पष्ट है—विशेषत: महादेवी जी के निबन्धों पर। काव्यशैली की भाँति गद्यशैली पर छायावाद का प्रभाव स्पष्ट है। इस प्रभाव का सर्वोत्तम रूप प्रसाद और महादेवी के गद्य में मिलता है और निकृष्टतम रूप चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की कहानियों में। भावात्मक और कल्पना-प्रवण जीवन दृष्टि होने के कारण छायावाद की अभिव्यक्ति मुख्यत: रचनात्मक साहित्य और उसमें भी केवल कविता में हुई।

कुल मिलाकर छायावाद आधुनिक खड़ी बोली कविता के स्वाभाविक विकास की चरम परिणति है। जैसा कि मुकुटधर पांडेय ने छायावाद के आरम्भिक युग में ही कहा था, ''इसका सूत्रपात उस महापुरुष की दिव्य लेखनी से हुआ है जो वर्तमान कालीन हिन्दी भाषा का जनक माना जाता है।'' स्पष्टत: मुकुटधर पांडेय का यह संकेत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ओर था। मुकुटधर पांडेय ने भारतेन्दु को छायावाद का प्रवर्तक नहीं कहा है, बल्कि उस परिवर्तन का सूत्रपात करनेवाला कहा है, जो कविता के भावराज्य में उस समय के अनुसार, विगत चालीस-पचास वर्षों में हुआ था। आज इस बात को समझने और मानने में कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन एक जमाना था जब छायावाद को सर्वथा विदेशी प्रभाव मानकर उड़ा दिया जाता था। स्वयं आचार्य शुक्ल जैसे गम्भीर आलोचक का भी विचार था कि यदि अनेक विदेशी वादों से प्रभावित 'छायावाद' नाम की काव्यधारा हिन्दी में न चल पड़ती तो मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय आदि द्वारा प्रवर्तित हिन्दी की प्रकृत काव्यधारा—स्वच्छन्दतावाद का स्वाभाविक विकास होता। 'जो यह होता तो क्या होता' जैसी अटकलबाजी छोड़कर यदि विचार करें तो स्पष्ट होगा कि मुकुटधर पांडेय आदि की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की स्वाभाविक परिणति छायावाद के रूप में हुई। मुकुटधर आदि स्वच्छंदतावादी कवि वस्तुत: छायावाद के ही पुरस्कर्ता थे, उसी प्रकार जैसे अंग्रेजी साहित्य में बर्न्स, वड्‌र्सवर्थ आदि कवि शेली, कीट्स, बायरन के पुरस्कर्ता थे। आज का इतिहासकार तो यही अनुभव करता है कि विदेशी साहित्य ने हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के विकास में बाधा नहीं डाली, बल्कि उसे छायावाद में रूपान्तरित होने में सहायता पहुँचाई।

Scanned with CamScanner

छायावाद को द्विवेदी-युग की प्रतिक्रिया कहने से कुछ लोगों के मन में धारणा बन गयी है कि छायावाद पूर्ववर्ती कविता की परम्परा के विरुद्ध कोई एकदम नयी काव्य-प्रवृत्ति है; लेकिन जिनमें ऐतिहासिकता का थोड़ा-सा भी बोध है वे जानते हैं, ऐतिहासिक विकास पूर्ववर्ती युग के अंतर्विरोधों से तथा उसकी प्रतिक्रिया से ही होता है। फलत: छायावाद द्विवेदी-युग का ऐतिहासिक विकास है और इस प्रकार छायावाद हिन्दी साहित्य की परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में भक्ति-काव्य के बाद छायावादी काव्य का ही नाम लिया जाता है।

जिस प्रकार बारहवीं-तेरहवीं सदी में शुरू होनेवाले मध्ययुगीन सांस्कृतिक पुनरुत्थान का चरमोत्कर्ष सोलहवीं सदी के भक्ति-काव्य में हुआ उसी प्रकार उन्नीसवीं सदी में शुरू होने वाले आधुनिक सांस्कृतिक जागरण का चरमोत्कर्ष बीसवीं सदी के छायावादी काव्य तथा प्रेमचन्द के उपन्यासों में हुआ। हिन्दी साहित्य में छायावादी कविता का ऐतिहासिक महत्त्व होने के साथ ही शाश्वत मूल्य है। छायावाद में अनुभूति अपेक्षाकृत कम और कल्पना वैभव अधिक है, इसलिए यह भक्ति-काव्य के बराबर नहीं आता, फिर भी इसमें मानव-हृदय को रसमग्न करने और शक्ति देने योग्य स्थायी गुण बहुत से हैं।

छायावाद का ऐतिहासिक कार्य संक्षेप में रामविलास शर्मा के शब्दों में यह है कि "द्विवेदी युग की वैष्णवी श्रद्धा और सशंक नैतिकता के बदले पहले-पहल अविश्वास और मानवीय प्रेम और शृंगार के स्वर सुनाई पड़ते हैं, नैतिकता के विरोध में उच्छृंखलता का रूप नहीं लिया। नये कवियों ने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए उस सामाजिक स्वाधीनता की माँग की जिसे पिछले युग के सामाजिक बंधन दबाकर रखना चाहते थे। इन कवियों के नये ढंग से प्रकृति का चित्रण शुरू किया; इस तरह की कविता को उन्होंने लक्षण ग्रन्थों की सीमाओं से उबार लिया। उद्दीपन या उपदेश के लिए प्रकृति का वर्णन काफी नहीं था। प्रकृति रूप में भी प्रकृति का उपयोग किया, लेकिन पहले-पहल हिन्दी कविता में उसके यथार्थ चित्र देखने को मिले। सामाजिक रचनाओं में दलित वर्ग के प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की तो साथ ही साथ सामाजिक ढाँचा बदलने के लिए विप्लव और क्रान्ति की माँग भी की। रहस्यवादी कविताओं में उन्होंने आनन्द और प्रकाश में इष्टदेव की कल्पना की, लेकिन अपने जीवन की दारुण व्यथा को भी वे भुला नहीं सके। छन्द और भाषा में नये प्रयोग करके उन्होंने रीतिकालीन आचार्यों को बता दिया कि हिन्दी कविता में एक नये युग का आरम्भ हो गया है।"

■

Scanned with CamScanner